नईदुनिया

किस वजह से लड़ी जा रही है अमेरिका-ईरान में जंग ...?

डॉ. विश्वास तिवारी

जब पूरे विश्व में युद्ध की वजह से पहले ही उथल-पुथल मची हुई थी, तब अमेरिका ने इजराइल के साथ मिलकर 28 फरवरी को ईरान पर हमला शुरू कर दिया। इस ऑपरेशन का नाम दिया गया 'एपिक फ्यूरी यानि प्रचंड प्रहार' अभी तक रूस और यूक्रेन का युद्ध समाप्त नहीं हुआ है। अफगानिस्तान और पाकिस्तान भी खूल कर मैदान में आ गए है। ऐसे में क्या यह युद्ध जरूरी था, क्या इसे टाला नहीं जा सकता, था, बातचीत से क्या कोई बीच का रास्ता नहीं निकाला जा सकता था। ऐसा लगता है कि अमेरिका ने दुनिया में अपनी चौधराहट बनाए रखने के लिए और अपने साम्राज्यवादी मंसूबों को पूरा करने के लिए पूरे पश्चिम एशिया में युद्ध के कारण संकट में डाल दिया है। ईरान के सबसे ताकतवर नेता अयातुल्ला अली खामेनेई की मौत के बाद लगा था कि अब ये युद्ध जल्दी ही खत्म हो जाएगा, लेकिन अब इसके आसार नहीं दिखाई दे रहे है। ईरानी सेना बदला लेने की धमकी दे रही है। ईरानी सेना एक और तो इजराइल को निशाना बना रही है वहीं उसके साथ ही सऊदी अरब, कतर, जार्डन, ओमान, बहरीन, कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात सहित कुल 13 देश जहां अमेरिका सेना के बेस है के साथ-साथ नागरिक क्षेत्रों को भी निशाना बना रही है। इस युद्ध में हजारों की संख्या में लोग मारे जा रहे है। इसमें एक स्कूल पर हुए अमेरिकी हमले में 165 लड़कियां भी मारी गई। हर युद्ध को शुरू करने के लिए एक कानून होना चाहिए। अब तो यह लगने लगा है कि ग्रामीण क्षेत्रों की कहावत ' जिसकी लाठी उसकी भैंस' अब विदेशों में भी लागू हो गई है। ऐसा लगता है कि 'संयुक्त राष्ट्र संघ' अब एक दिखावा भर रह गया है। अगर ताकतवर देश ऐसे ही बार-बार अंतरराष्ट्रीय कानून तोड़ते रहे तो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बनी यह व्यवस्था ढह सकती है। द्वितीय विश्व युद्ध के विजेता देशों ने मिलकर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की थी। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय संघर्ष में हस्तक्षेप कर उसे रोकना था। 25 अक्टूबर 1945 में स्थापित इस संघ में 193 राष्ट्र शामिल है। अब जैसे-जैसे विश्व में अशांति बढ़ रही है अब इसकी प्रासंगगिकता पर सवाल खड़े हो रहे है। जहां एक और पूरे विश्व के 29 प्रतिशत लोगों को दो वक्त का खाना भी नहीं मिलता है वहां युद्ध में करोड़ों-अरबों डॉलर फूक दिए जाते है। अमेरिका के इस रवैये से पूरे विश्व में हथियारों की दौड़ बढ़ रही है। चीन ने तुरंत ही अपने रक्षा बजट में 7 फीसदी का इजाफा कर दिया है। फ्रांस ने भी कहा है कि वह अपने परमाणु हथियारों की संख्या में विस्तार करेगा। खामेनाई और कई वरिष्ठ अधिकारियों के मारे जाने से क्या ईरान की सत्ता भी बदल जाएगी जो की डोनाल्ड ट्रंप चाहते है। कई बार ऐसा होता है कि युद्ध के समय देश की सभी नागरिक एकजुट हो जाते है। नेतृत्व में हुई क्षति के बावजूद इस्लामिक रिवोल्यूशनरी गार्ड

हर युद्ध को शुरू करने के लिए एक कानून होना चाहिए। अब तो यह लगने लगा है कि ग्रामीण क्षेत्रों की कहावत ' जिसकी लाठी उसकी भैंस' अब विदेशों में भी लागू हो गई है। ऐसा लगता है कि 'संयुक्त राष्ट्र संघ' अब एक दिखावा भर रह गया है। अगर ताकतवर देश ऐसे ही बार-बार अंतरराष्ट्रीय कानून तोड़ते रहे तो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बनी यह व्यवस्था ढह सकती है। द्वितीय विश्व युद्ध के विजेता देशों ने मिलकर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की थी। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय संघर्ष में हस्तक्षेप कर उसे रोकना था।

कॉर्प्स एक शक्तिशाली संगठन बना हुआ है। ईरान में हाल ही में हुए इतने विरोध प्रदर्शन के बावजूद वहां का एक बड़ा वर्ग अब भी वहां की कट्टरपंथी व्यवस्था को अपने रक्षक के रूप में देखता है।

अमेरिका के अलावा पूरी दुनिया की एक चिंता थी कि अगर ईरान परमाणु हथियार बना लेगा तो पूरे मध्य एशिया में हथियारों की होड़ शुरू हो जाएगी। ईरान के परमाणु कार्यक्रम को लेकर पूरे विश्व में एक डर का माहौल था। ऐसा लग रहा था कि बिजली-ऊर्जा की आड़ में कहीं ईरान परमाणु बम का निर्माण तो नहीं कर रहा है। इसी दुविधा को दूर करने के लिए वर्ष 2015 में ईरान और छह महाशक्तियों अमेरिका, रूस, ब्रिटेन चीन और फ्रांस ने एक समझौता किया था। जिसे नाम दिया गया जाइंट कम्प्रहेनसिव प्लान ऑफ एक्शन (जेसीपीओए) जिसमें यह तय किया गया कि ईरान अपना परमाणु कार्यक्रम सीमित करेगा जिसके बदले दुनिया उस पर लगाए प्रतिबंध हटा लेगी। असल में परमाणु हथियार बनने से सऊदी अरब और इजराइल के साथ उसकी प्रतिद्वंदिता तेज हो जाती जिससे तनाव बढ़ जाता। जब ईरान से यह प्रतिबंध हटे और तेल निर्यात और बैंकिग पाबंदी हटाई गई तो उसकी अर्थव्यवस्था फिर से पटरी पर आने लगी। तेल का निर्यात बढ़ा और विदेशी कंपनियां फिर से लौटने लगी। लेकिन 2018 में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने यह समझौता तोड़ दिया और फिर से प्रतिबंध लगा दिए। इससे रूस और चीन ईरान के करीब आ गए। अब इस युद्ध का असर पूरे विश्व पर दिखाई देने लगा है। ईरान ने होर्मुज स्ट्रेट को बंद कर दिया है और जलडमरू मध्य पर भी उसका नियंत्रण है। यह फारस की खाड़ी को अरब सागर से जोड़ने वाला प्रमुख जल मार्ग है।

इसे दुनिया में तेल गैस या ऊर्जा सप्लाई की जीवनरेखा कहा जाता है समुद्री मार्ग से जितना भी तेल और गैस ढोया जाता है, उसका करीब एक चौथाई हिस्सा इसी रास्ते से गुजरता है। भारत के लिए परेशानी इसलिए बड़ी है, क्योंकि भारत दुनिया का तीसरा बड़ा तेल आयातक है। यह अपनी जरूरत का लगभग 85 प्रतिशत तेल और गैस दूसरे देशों से खरीदता है। इसका भी करीब 40 फीसदी हिस्सा होर्मुज के रास्ते आता है। युद्ध के 8 वें दिन ही पेट्रोलियम कंपनियों ने घरेलु गैस सिलेंडर के भाव 60 रुपये बढ़ा दिए है। ईरान ने होर्मुज जल मार्ग को बंद कर समझदारी का काम नहीं किया है। ऐसा करके वह अपने को विश्व से अलग ही कर रहा है। जब तेल और ऊर्जा के दाम बढ़ेंगें तो उसका असर हर देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। ऐसे में उसे जो गिने-चुने देश भी सहानभूति मिली हुई है वह भी खत्म हो जाएगी।

ईरान ने कठोर प्रतिबंधों के बावजूद परमाणु हथियार बनाने पर अमादा है और हमास और हिजबुल्ला जैसे आतंकवादी गुटों को हथियार और पैसा लगातार दे रहा है ताकि वो इजराइल को कमजोर कर सके। ऐसे में चीन और रूस जैसे उसने हमदर्द देश भी उसकी एक सीमा के बाद मदद करना बंद कर देंगे।

यह युद्ध जितनी जल्दी समाप्त होगा उतनी ही जल्दी सारे देशों की समस्या खत्म होगी, अगर यह लंबा चला तो पूरे विश्व को एक और विश्व युद्ध का सामना करना पड़ेगा।

ईरान युद्ध और रसोई की चिंता: गैस संकट के बीच विकल्पों की तलाश

आरजू यादव और गरिमा शर्मा

पश्चिम एशिया में ईरान के इर्दङ्गगिर्द उत्पन्न हुए युद्ध जैसे हालात का असर अब भारत की रोजमर्रा की जिंदगी पर भी दिखाई देने लगा है। अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा आपूर्ति पर पड़े दबाव के कारण देश के कई हिस्सों में रसोई गैस की उपलब्धता प्रभावित हुई है। अनेक शहरों में कमर्शियल सिलेंडरों की आपूर्ति पर अस्थायी रोक लगने की खबरें सामने आ रही हैं, वहीं घरेलू सिलेंडर प्राप्त करने के लिए गैस एजेंसियों के बाहर लंबी कतारें दिखाई दे रही हैं। कई स्थानों पर लोग सुबह से ही एजेंसियों के सामने लाइन लगाकर अपनी बारी का इंतजार करते देखे जा रहे हैं। होटल, ढाबे और छोटे भोजनालय भी इस संकट से जूझ रहे हैं, क्योंकि उनके लिए कमर्शियल गैस सिलेंडर ही रसोई का मुख्य आधार होता है। रसोई का यह संकट केवल आपूर्ति की समस्या नहीं है, बल्कि यह हमें ऊर्जा पर हमारी बढ़ती निर्भरता और विकल्पों की आवश्यकता पर भी सोचने के लिए मजबूर करता है। भारत जैसे विशाल देश में रसोई गैस पिछले कुछ दशकों में भोजन पकाने का सबसे लोकप्रिय माध्यम बन चुकी है। स्वच्छता, सुविधा और तेज़ी के कारण एलपीजी ने पारंपरिक ईंधनों की जगह ले ली है। ग्रामीण क्षेत्रों से लेकर महानगरों तक गैस चूल्हा अब लगभग हर घर की रसोई का अनिवार्य हिस्सा बन गया है।

लेकिन जब अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियाँ अचानक बदलती हैं और आपूर्ति श्रृंखला प्रभावित होती है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी एक स्रोत पर अत्यधिक निर्भरता जोखिम भी पैदा कर सकती है। आज जो स्थिति दिखाई दे रही है, वह इसी सच्चाई का संकेत है। ऐसे समय में यह जरूरी हो जाता है कि हम भोजन बनाने के वैकल्पिक तरीकों पर भी गंभीरता से विचार करें और उन्हें अपनाने की तैयारी रखें।

वर्तमान गैस संकट हमें एक महत्वपूर्ण संदेश देता है। ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता और विविध विकल्पों का विकास केवल आर्थिक या पर्यावरणीय आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह सामाजिक स्थिरता के लिए भी जरूरी है।

यदि रसोई जैसी मूलभूत व्यवस्था किसी एक ईंधन पर पूरी तरह निर्भर हो जाए, तो वैश्विक घटनाओं का सीधा प्रभाव आम नागरिक के जीवन पर पड़ता है।

इसलिए समय की मांग है कि सरकार, समाज और नागरिक सभी स्तरों पर ऊर्जा के विविध स्रोतों को अपनाने की दिशा में गंभीरता से विचार करें। सौर ऊर्जा, बायोगैस और बिजली आधारित उपकरणों का अधिक उपयोग न केवल संकट की घड़ी में सहायक होगा, बल्कि दीर्घकाल में ऊर्जा सुरक्षा को भी मजबूत करेगा।

रसोई केवल भोजन पकाने की जगह नहीं होती, बल्कि यह घर के जीवन का केंद्र होती है। यदि हम थोड़ी दूरदर्शिता और व्यावहारिक समझ के साथ उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करना सीख लें, तो किसी भी संकट की स्थिति में भी रसोई की आग बुझने नहीं देनी पड़ेगी।

• बिजली से चलने वाले उपकरण

यदि घर में बिजली उपलब्ध है तो इंडक्शन चूल्हा, इलेक्ट्रिक हॉट प्लेट और राइस कुकर जैसे उपकरण सबसे सरल और प्रभावी विकल्प साबित हो सकते हैं। शहरी घरों में इनका उपयोग पहले से ही बढ़ रहा है और गैस संकट के समय ये रसोई का महत्वपूर्ण सहारा बन सकते हैं। इंडक्शन चूल्हे पर दाल, सब्जी, चावल, चाय या नाश्ते जैसी रोजमर्रा की चीजें आसानी से बनाई जा सकती हैं। इलेक्ट्रिक राइस कुकर में केवल चावल ही नहीं, बल्कि खिचड़ी, दाल या हल्की सब्जियां भी पकाई जा सकती हैं। यह तरीका अपेक्षाकृत सुरक्षित, साफ-सुथरा और सुविधाजनक माना जाता है।

• मिट्टी या लकड़ी का चूल्हा

भारतीय समाज में मिट्टी का चूल्हा सदियों से भोजन पकाने का प्रमुख साधन रहा है। ग्रामीण जीवन की यह परंपरा आज भी कई स्थानों पर जीवित है। लकड़ी, सूखी टहनियों या उपलों से जलने वाला यह चूल्हा संकट के समय बेहद उपयोगी विकल्प साबित हो सकता है। कम साधनों में भी इसे आसानी से तैयार किया जा सकता है और भोजन पकाया जा सकता है। कई लोग मानते हैं कि पारंपरिक चूल्हे पर पकाया गया भोजन स्वाद में भी अलग होता है और उसमें एक विशेष सुगंध होती है।

• कोयले की अंगीठी

कोयले की अंगीठी भी भोजन पकाने का एक व्यावहारिक और प्रभावी तरीका है। लोहे या मिट्टी की छोटी अंगीठी में कोयला जलाकर रोटी, सब्जी, चाय या अन्य भोजन आसानी से बनाया जा सकता है। शहरों में भी कई परिवार आपात स्थिति में इसका उपयोग करते हैं। छोटे होटल और ढाबे भी कई बार अंगीठी का सहारा लेते हैं। यह तरीका कम जगह में भी अपनाया जा सकता है और अपेक्षाकृत कम खर्च में रसोई का काम चलाया जा सकता है।

• सोलर कुकर

सौर ऊर्जा आज वैकल्पिक ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत बनती जा रही है। सोलर कुकर के माध्यम से धूप की गर्मी का उपयोग कर भोजन पकाया जा सकता है। इसमें चावल, दाल, सब्जी या दालिया जैसी चीजें आसानी से बन सकती हैं। हालांकि इसमें सामान्य चूल्हे की तुलना में थोड़ा अधिक समय लगता है, लेकिन इसमें किसी प्रकार के ईंधन की आवश्यकता नहीं होती। भारत जैसे धूप प्रधान देश में सोलर कुकर का उपयोग ऊर्जा बचत और पर्यावरण संरक्षण दोनों दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

• बायोगैस

ग्रामीण क्षेत्रों में बायोगैस संयंत्र भी एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करते हैं। पशुधन से प्राप्त गोबर और जैविक अपशिष्ट से तैयार होने वाली गैस का उपयोग सीधे चूल्हे में किया जा सकता है। इससे न केवल ईंधन की समस्या कम होती है, बल्कि स्वच्छ ऊर्जा के उपयोग को भी बढ़ावा मिलता है। कई गांवों में बायोगैस संयंत्रों ने रसोई गैस पर निर्भरता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

बिना आग के भोजन

ऐसे कई खाद्य पदार्थ हैं जिन्हें बिना पकाए भी खाया जा सकता है और जो पोषण की दृष्टि से भी अत्यंत लाभकारी होते हैं। अंकुरित अनाज, भीगा हुआ चना या मूंग, फल, सलाद और दही जैसे खाद्य पदार्थ संकट की स्थिति में उपयोगी विकल्प साबित हो सकते हैं। यह न केवल ऊर्जा की बचत करते हैं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी अच्छे माने जाते हैं। आपात स्थिति में इस प्रकार का भोजन शरीर को आवश्यक पोषण भी प्रदान करता है।

अविश्वास प्रस्ताव खारिज पर संसदीय विश्वास की चुनौती बरकरार...

राजेन्द्र कानूनगो

लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला के विरुद्ध विपक्ष द्वारा लाए गए अविश्वास प्रस्ताव का खारिज होना भारतीय संसदीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। यह न केवल सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच बढ़ते टकराव को दर्शाता है, बल्कि संसदीय मर्यादाओं और नियमों की व्याख्या पर भी एक नई बहस छेड़ता है। इस पूरे घटनाक्रम, इसके संवैधानिक पहलुओं और राजनीतिक निहितार्थों का विस्तृत विश्लेषण करना जरूरी है।

संसदीय लोकतंत्र में लोकसभा अध्यक्ष का पद अत्यंत गरिमामय और निष्पक्ष माना जाता है। अध्यक्ष सदन का संरक्षक होता है और उसका कर्तव्य सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों को समान अवसर प्रदान करना है। हालांकि, हाल के वर्षों में भारतीय संसद में तीखी नोकझोंक और गतिरोध आम बात हो गए हैं। विपक्ष का मुख्य आरोप यह था कि अध्यक्ष का झुकाव सत्ता पक्ष की ओर है। विपक्ष द्वारा कई बिंदुओं को प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया गया। विपक्षी दलों का तर्क था कि महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा के दौरान उनके माइक बंद कर दिए जाते हैं या उन्हें पर्याप्त समय नहीं दिया जाता। रिकॉर्ड संख्या में विपक्षी सांसदों के निलंबन को विपक्ष ने 'लोकतंत्र की हत्या' करार दिया। बिना विस्तृत चर्चा के शोर-शराबे में महत्वपूर्ण विधेयकों को पारित कराने की प्रक्रिया पर भी सवाल उठाए गए।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 94 और 96 में लोकसभा अध्यक्ष को पद से हटाने की प्रक्रिया का उल्लेख है। लोकसभा के नियमों के तहत अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव लाने के लिए कम से कम 14 दिनों का पूर्व नोटिस देना आवश्यक है। अविश्वास प्रस्ताव खारिज होने के कई तकनीकी और राजनीतिक कारण रहे हैं।

लोकसभा में सरकार के पास स्पष्ट बहुमत होने के कारण किसी भी ऐसे प्रस्ताव का गिरना लगभग तय ही होता है। प्रस्ताव पारित करने के लिए 'तत्कालीन सदस्यों के बहुमत' की आवश्यकता होती है। यदि प्रस्ताव तय प्रक्रिया के अनुसार नहीं लाया गया है, तो उसे तकनीकी आधार पर भी खारिज किया जा सकता है।

लोकसभा अध्यक्ष के खिलाफ प्रस्ताव लाना एक गंभीर कदम है। यह दर्शाता है कि सदन के भीतर विश्वास की कमी किस स्तर तक पहुँच चुकी है। जब अध्यक्ष पर ही सवाल उठने लगें, तो संसदीय कार्यवाही का सुचारू रूप से चलना कठिन हो जाता है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 94 और 96 में लोकसभा अध्यक्ष को पद से हटाने की प्रक्रिया का उल्लेख है। लोकसभा के नियमों के तहत अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव लाने के लिए कम से कम 14 दिनों का पूर्व नोटिस देना आवश्यक है। अविश्वास प्रस्ताव खारिज होने के कई तकनीकी और राजनीतिक कारण रहे हैं।

लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला ने अपने कार्यकाल के दौरान सदन की उत्पादकता बढ़ाने पर जोर दिया है। कई सत्रों में काम का स्तर 100 से अधिक रहा। हालांकि, विपक्ष का मानना है कि 'काम की मात्रा' से अधिक 'चर्चा की गुणवत्ता' महत्वपूर्ण है।

इस प्रस्ताव के खारिज होने के कई दूरगामी परिणाम होंगे। सत्ता पक्ष की मजबूती के रूप में सरकार ने इसे अपनी नीतियों और अध्यक्ष की निष्पक्षता पर मुहर के रूप में पेश किया है। वहीं विपक्ष की रणनीति यह है कि भले ही अविश्वास प्रस्ताव गिर गया हो, लेकिन विपक्ष ने इसके माध्यम से देश का ध्यान इस ओर खींचने की कोशिश की है कि सदन में उनकी बात नहीं सुनी जा रही है।

यह घटना संकेत देती है कि आने वाले समय में सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच समन्वय और अधिक चुनौतीपूर्ण होगा।

लोकसभा अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव का खारिज होना कानूनी रूप से एक प्रक्रिया का अंत हो सकता है, लेकिन लोकतांत्रिक विमर्श में यह एक नई शुरुआत है। संसद केवल कानून बनाने की मशीन नहीं है, बल्कि यह वह मंच है जहाँ हर असहमति को सम्मान मिलना चाहिए। अध्यक्ष का पद किसी दल का नहीं, बल्कि पूरे सदन का होता है। सदन की गरिमा तभी बनी रह सकती है जब सत्ता पक्ष लचीलापन दिखाए और विपक्ष रचनात्मक भूमिका निभाए। लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला के खिलाफ प्रस्ताव का खारिज होना सरकार के लिए जीत तो है, लेकिन यह सदन के भीतर विश्वास बहाली की जिम्मेदारी को और बढ़ा देता है।

कर्ज के बोझ तले विकास का रास्ता: मध्यप्रदेश की आर्थिक चुनौती

जब किसी राज्य की आय की तुलना में ब्याज भुगतान तेजी से बढ़ता है, तो यह स्थिति वित्तीय असंतुलन की ओर इशारा करती है। चिंता का सबसे बड़ा कारण यह है कि राज्य की आय का बड़ा हिस्सा केवल ब्याज भुगतान में ही खर्च हो रहा है। सरकार को पुराने कर्जों का ब्याज चुकाने में भारी राशि लगानी पड़ रही है, जिसके कारण विकास के लिए उपलब्ध संसाधन सीमित हो जाते हैं। इसके अलावा वेतन, पेंशन और प्रशासनिक खर्च जैसे अनिवार्य व्यय भी बजट का बड़ा हिस्सा अपने आप ले लेते हैं। परिणामस्वरूप सरकार के पास नई योजनाओं और जनहित कार्यक्रमों के लिए अपेक्षाकृत कम संसाधन बचते हैं।

मध्यप्रदेश को अक्सर तेजी से विकास करने वाले राज्यों में गिना जाता है। सड़क, पुल, अस्पताल, स्मार्ट सिटी, मेट्रो और अन्य बुनियादी ढांचे के निर्माण के बड़े-बड़े दावे सरकार की उपलब्धियों के रूप में सामने रखे जाते हैं। लेकिन इन दावों के पीछे एक गंभीर आर्थिक सच्चाई भी छिपी हुई है। हाल की रिपोर्टों के अनुसार मध्यप्रदेश पर कर्ज का बोझ लगातार बढ़ता जा रहा है और राज्य की वित्तीय स्थिति चिंता का विषय बनती जा रही है। विकास की दौड़ में आगे बढ़ते हुए राज्य अब कर्ज के दबाव में हांफता हुआ दिखाई दे रहा है।

वर्तमान स्थिति यह है कि मध्यप्रदेश पर कुल कर्ज लगभग 5 लाख करोड़ रुपये के आसपास पहुंच चुका है। दूसरी ओर वर्ष 2026-27 के लिए राज्य का अनुमानित कुल बजट करीब 4 लाख 48 हजार करोड़ रुपये है। यह स्थिति इस बात का संकेत देती है कि राज्य की कुल देनदारियां उसके वार्षिक बजट से भी अधिक हो चुकी हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए यह संकेत सामान्य नहीं माना जाता, क्योंकि इससे भविष्य में वित्तीय दबाव बढ़ने की संभावना रहती है।

एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट के अनुसार देश के 18 बड़े राज्यों में कर्ज चुकाने की क्षमता के मामले में मध्यप्रदेश दसवें स्थान पर है, जबकि कर्ज प्रबंधन और ऋण स्थिरता के पैमाने पर राज्य को सबसे कम दो अंक प्राप्त हुए हैं। इसका अर्थ यह है कि राज्य की आर्थिक वृद्धि और कर्ज के बोझ के बीच संतुलन बिगड़ता जा रहा है।

जब किसी राज्य की आय की तुलना में ब्याज भुगतान तेजी से बढ़ता है, तो यह स्थिति वित्तीय असंतुलन की ओर इशारा करती है। चिंता का सबसे बड़ा कारण यह है कि राज्य की आय का बड़ा हिस्सा केवल ब्याज भुगतान में ही खर्च हो रहा है। सरकार को पुराने कर्जों का ब्याज चुकाने में भारी राशि लगानी पड़ रही है, जिसके कारण विकास के लिए उपलब्ध संसाधन सीमित हो जाते हैं। इसके अलावा वेतन, पेंशन और प्रशासनिक खर्च जैसे अनिवार्य व्यय भी बजट का बड़ा हिस्सा अपने आप ले लेते हैं। परिणामस्वरूप सरकार के पास नई योजनाओं और जनहित कार्यक्रमों के लिए अपेक्षाकृत कम संसाधन बचते हैं।

हालांकि इस पूरे परिदृश्य का एक सकारात्मक पहलू भी है। नीति से जुड़ी रिपोर्टों के अनुसार मध्यप्रदेश कर्ज लेकर उसे अनुत्पादक कार्यों में खर्च नहीं कर रहा है। कर्ज की गुणवत्ता के मामले में राज्य को 60.8 अंक प्राप्त हुए हैं और इस आधार पर वह देश में उड़ीसा और झारखंड के बाद तीसरे स्थान पर है। इसका मतलब है कि सरकार कर्ज का एक बड़ा हिस्सा सड़कों, पुलों, अस्पतालों और अन्य बुनियादी ढांचे के निर्माण जैसे पूंजीगत विकास कार्यों में लगा रही है। दीर्घकाल में ये परियोजनाएं राज्य की आर्थिक क्षमता को मजबूत कर सकती हैं।

फिर भी वास्तविक चुनौती यह है कि इन परियोजनाओं से तत्काल आय या राजस्व उतना नहीं आ रहा है जितनी उम्मीद की जाती है। स्मार्ट सिटी, मेट्रो, फ्लाईओवर और बड़े इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट्स पर भारी निवेश हो रहा है, लेकिन उनसे आर्थिक लाभ धीरे-धीरे और लंबी अवधि में मिलता है। जब तक इनसे पर्याप्त आय उत्पन्न नहीं होती, तब तक कर्ज का दबाव बना रहता है। राज्य के प्रशासनिक ढांचे में भी कई असंतुलन दिखाई देते हैं। कई विभागों में कर्मचारियों के रिटायर होने के बाद पद खाली पड़े हुए हैं और उनकी भर्ती समय पर नहीं हो पा रही है। इससे प्रशासनिक कार्यों पर असर पड़ता है। दूसरी ओर सरकार को पेंशन और अन्य सामाजिक दायित्वों का बोझ भी उठाना पड़ रहा है। इन सब कारणों से सरकारी खर्च लगातार बढ़ता जा रहा है।

मध्यप्रदेश की वित्तीय स्थिति को समझने के लिए एक कहावत अक्सर सुनाई देने लगी है- 'आमदनी अठन्नी, खर्चा रुपैया।' इसका आशय यह है कि राज्य की आय के मुकाबले खर्च कहीं अधिक तेजी से बढ़ रहा है। यदि यही स्थिति लंबे समय तक बनी रहती है, तो भविष्य में कर्ज का बोझ और बढ़ सकता है।

ऐसी परिस्थिति में सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती राजस्व बढ़ाने और खर्चों को संतुलित करने की है। इसके लिए उद्योग, निवेश और रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देना आवश्यक होगा ताकि राज्य की आय में वृद्धि हो सके। साथ ही, गैर-जरूरी खर्चों पर नियंत्रण और योजनाओं के बेहतर क्रियान्वयन पर भी ध्यान देना होगा।

यह कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश विकास की दिशा में आगे बढ़ रहा है, लेकिन इस विकास की गति को टिकाऊ बनाने के लिए वित्तीय अनुशासन बेहद जरूरी है। यदि कर्ज का प्रबंधन संतुलित तरीके से किया गया और विकास परियोजनाओं से अपेक्षित आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ, तो राज्य भविष्य में इस आर्थिक दबाव से बाहर निकल सकता है। अन्यथा कर्ज का बढ़ता बोझ विकास की रफ्तार को धीमा भी कर सकता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)